दूसरे सूरज की तलाश

नवीन पछी



चर्चा प्रकाशन, जोधपुर



राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर
के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित

चर्चा प्रकाशन
ब्रह्मपुरी पीपलिया,
जोधपुर-342001
जोधपुर

प्रथम सस्करण 1992

आवरण
एस पी शर्मा

आलोक प्रेस,
जोधपुर

मूल्य 30 रुपये

Doosare Sooraj Ki Talash (*Poetry*) Navin Panchi

बीकानेर

आइये चलें, नवीन पछी की कविता पुस्तक 'दूसरे सूरज की तलाश' का अध्ययन आरम्भ करें

हिन्दी की समकालीन कविता का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए एक समकालीन प्रतिनिधि कवि केदारनाथ सिंह ने लिखा है—"समकालीन कविता एक उस सम्पूर्ण ढांचे के विरुद्ध जिस पर आज की स्थापित सत्ता और उच्चवर्गीय संस्कृति के खोखले मूल्य टंगे हुये हैं तथा उस कुचक्रपूर्ण दबाव के विरुद्ध जो उसे उस मूल ढांचे के भीतर भी अपनी विलक्षण प्रतिभा को स्थापित करने से रोकता है, एक सक्रिय विद्रोह की घोषणा है।" इसी सक्रिय विद्रोह की जो परम्परा तीव्र गति से विकसित हुई और अनेक युवा कवियों ने जिस तत्परता और ईमानदारी के साथ इस महत्वपूर्ण परम्परा को परिपुष्ट करने की भूमिका बनाई, नवीन पछी का नाम उन्हीं युवा कवियों में से एक है। "दूसरे सूरज की तलाश" कविता-संग्रह की अनेक छोटी बड़ी कविताओं में इसके कवि ने जहां एक ओर राष्ट्रीय क्षितिज पर व्याप्त सर्वग्राही अंधकार के विरुद्ध आक्रोश व्यक्त किया है वहीं दूसरी ओर आलोक के स्रोत रूप में "दूसरे सूरज" की तलाश से प्रयत्न भी किया है। रेखांकित करने की बात यह कि नवीन पछी ने स्निग्ध और शीतल प्रकाश के लिए किसी चन्द्रमा को नहीं तलाशा है, तलाशा है आलोकमय दहकते ऊर्जा के परम स्रोत सूरज को।

हिन्दी की समकालीन कविता इस अर्थ में भी महान है कि राजनीतिक संलग्नता के बावजूद मानवीय आत्मीयता और रागात्मक समृद्धि अर्जित करने के लिए कवियों ने भरपूर श्रम और सृजनात्मक संघर्ष किया है। नवीन पछी ने इस कविता संग्रह की एक दर्जन से भी अधिक कविताएं इसी मानवीय आत्मीयता एवं रागात्मकता से समृद्ध हैं। लेकिन जिन्दगी में रागात्मकता तथा आत्मीयता के साथ-साथ और भी बहुत सी चीजें हैं जो जिन्दगी का

नियमन किया करती हैं। इसीलिए जिन्दगी को पहचानने वाली दृष्टियाँ भी बहुरंगी तथा बहुआयामी हो जाया करती हैं। "आह' से उपजने वाली हिन्दी कविता परम्परा का समकालीन युवा कवि नवीन पंछी समयुगीन मानवीय जिन्दगी को परिभाषित करते हुए लिखता है—

"जिन्दगी आँसुओं का
अनुवाद नहीं है।
बेबसी ही इसका
पर्याय नहीं है।"

मानवीय जिन्दगी से यह पीड़ा, यह बेबसी सदा के लिए मिट जाए इस हेतु वह उन्हीं भोक्ता मनुष्यों को ललकारता है—

"तान लो सब मुट्ठियाँ
तोड़ दो सूरज का सिर
फिर कभी उगने न पाये
भूख से भरे ये दिन"

एक समकालीन कवियों की वर्तमान पीढ़ी सचेतन है, समझदार है। इसीलिए इनकी कविताओं में रम्यादमुद तत्वों की मंजूषा कहीं भी निर्मित नहीं हुई है। समता पर आधारित वर्गहीन शोषणमुक्त समाज को स्थापित करने में लगे जनवादी संघर्षों को तीव्र स्वर प्रदान करना इस महान कविता परम्परा का रचनात्मक लक्ष्य है। नवीन पंछी की कविता में इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निरन्तर संघर्ष की खोज और आत्मीय संलग्नता है। इस संग्रह की ढेर सारी कविताएं उसी संघर्ष के दौरान आई हुई जटिलताओं और विषमताओं से उलझती-सुलझती, निरन्तर आगे बढ़ती रागात्मकता का, सचेतनता की तथा समझदारी से एक चेतनशील सृजनात्मक उद्यम है। अगर इस युवा कवि का यह उद्यम निरन्तर तथा अबाध गति से विकास की ओर बढ़ता गया तो ऐसे और कई कविता संग्रह प्रकाश पायेंगे जो समकालीन हिन्दी कविता की परम्परा को शिखर तक ले जाने में महत्वपूर्ण सहयोग करेंगे।

इन्हीं कुछ शब्दों के साथ हम इस संग्रह का अध्ययन प्रारम्भ करें, दूसरे सूरज की तलाश में हम कवि का आत्मीय बनें, सहयात्री बनें।

(डा.) विमल
सदस्य
अध्यक्ष मंडल, अखिल भारतीय
जनवादी लेखक संघ, राजस्थान

जोधपुर

अपनी बात

"दूसरे सूरज की तलाश" का सफर तो जाने कितना पहले ही शुरू हो चुका है और जाने कब खत्म होगा। मे तो सिर्फ इस सफर मे शरीक हुआ हूँ, उन लोगो का हमसफर हूँ जो लगातार दूसरे सूरज की तलाश मे हैं।

जो यह सवाल उठाते हैं कि पहला गैर जरूरी हो गया क्या या इसे खारिज क्यो किया जाए ? मैं समझता हूँ कि उन्हे इस सवाल का जवाब ढूंढना भी चाहिए—चाहे खुद के लिए। जो इस तरह का सवाल नही करते वे बिना कहे ही इस सफर मे हमसफर हैं। मैं अपनी रचनाओ के बारे मे खुद क्या कहूँ जो कहेंगे इन्हे पढकर आप कहेगे। मैं कुछ कहूँ तो ऐसा लगेगा गोया आइने से पूछ रहा होऊं कि मैं कैसा लग रहा हूँ। और जाहिर है आईना अपनी आदत के मुताबिक मुझे भ्रम मे ही रखेगा। बहरहाल।

ऐसे मे, जबकि साहित्य मे मेरा शैशव-काल चल रहा है, कुछ कविताएँ इकट्ठी कर उन्हे किताब की शक्ल देने चल पडना है तो हास्यास्पद ही फिर भी इस अवस्था मे कोई भी हास्यास्पद हरकत हो ही सकती है और वह यथासम्भव क्षम्य भी है। मैं और क्या कहूँ। मित्रो का, विशेष तौर पर, भाई दिनेश सिंदल का आग्रह था कि जब लिख ही रहे हो तो लिखा है उसे सामने भी लाओ ताकि तुम्हारी रचनाओ का भी छिद्रान्वेषण हो जाए। सो उनके ही बार-बार उकसाने के बाद अब यह कविता-सग्रह आपके सामने रखने की हिम्मत जुटाई है मैंने। रचनाएं कैसी है इसका निर्णय पाठक के ही जिम्मे। हाँ, पाठकीय प्रतिक्रिया सिर-आँखो पर।

मैं उन सभी स्वजनो, मित्रो और परिचितो का आभारी हूँ जिन्होने इस "कविता सग्रह" के प्रकाशन के लिए मेरा हौसला बढाया। भाई दिनेश का विशेष आभारी इसलिए हूँ कि उन्होने ही शुरू से आखिर तक मेरा सिरदर्द मोल लिया।

और क्या कहूँ ?

पतझड का कोई दिन
1992

नवीन पंछी

अधेरे की उस दहलीज को समर्पित
जहा से तमाम भोथरे और बदरग
इसानी रिश्ते रोशनी की हद मे
छिनगाने के लिए निकल पडते हैं।

अनुक्रम

आईना

'आई ना'
अब नही कहूँगा
अब कहूँगा
आईना तुम्हे
छवि नही निहारूँगा
लेकिन
चाहूँगा सहेज कर
सम्हल कर रखूँ
आईना
इस पर कोई गर्द नही जमे
न ही कोई दरार आए
आईना कभी पटक कर
चकनाचूर भी न हो।

उनकी शर्तों पर

उनकी शर्तों पर
जीना है
अब आपको
गर मंजूर हो तो
फिर कीजिए कोशिश
जिंदा भर रहने की

छोड़ दीजिए
अपनी शर्तों पर जीने की
प्रतिबद्धता

सवाल अभी तक वही है
उनकी शर्तें मान भी लीं
तो क्या होगा
कोई जिंदा रह सकेगा ?

साजिश

मेरा देश
फिर
दो हिस्सो मे
बट गया है
एक सूखे से सट गया
दूजा बाढ़ मे बह गया
दोनो हिस्सो के बीच
एक सौदागर
देश को बेच देने के
मूड मे खड़ा है।
मै सोचता हूँ
इस देश का
वर्तमान
भूत
भविष्य
अब छूटेगा
पुश्तैनी सौदागरो के
शिकजो से।

संदर्भ अपने अपने

माना
उनकी कोई भी खुशी
समय के संदर्भ से
जुड़ी नहीं रह सकती
मगर
ऐसा क्यूं होता है कि
उनके आंसू ही
प्रासंगिक हुआ करते हैं
हर वक्त ।

वेदना के वृत्त

आओ कुछ दूर तक टहल आए
जहाँ कहीं मिले
जीने का भय छूट जाए
मौन रहने से कहीं अच्छा है
जीवन से कुछ संवाद हो जाए
जीवन कहीं मिले तो कुछ दिन ठहर जाए
रास्ता पहले तय करने से बेहतर है
साथ साथ चला जाए

स्मृतियाँ की हद तक टूट कर बिखरे
मन-चित्र को
फिर से जोड़ने का उपक्रम करें
कुछ तो हो जिससे जड़ता टूटे
आत्मपीड़ाओं से पीछा छूटे
चलते रहें तो चलता रहेगा चक्र
वर्ना
दुख-सुख पर लेप
ये वेदना के वृत्त।

चेहरे डरावने

अपने चारों ओर घिरे चेहरों से
मत डरो बच्चे !
चेहरे अब/उतने भयानक और डरावने कहाँ रहे हैं ?

तुम अक्सर काले चेहरों से डरा करते हो
अंधेरे में सहम जाया करते हो
यह डर मन से निकाल दो बच्चे
अब जरूरत है
अंधेरे और काले चेहरों से नहीं
चकाचौंध रोशनी
और कहीं-कहीं उजले चेहरों से
फकत सावधान रहने की
मतलब यह कतई नहीं कि
हमेशा अंधेरे में रहो
रास्ते में बिखरी रस्सियों को
साँप समझकर डरते रहो
और रोशनी से पलायन करो
नहीं ।
रोशनी उतनी ही जरूरी है
जितनी कि आँखें पचा सकें ।

तुम अभी बच्चे हो
भेद और भेदिया व भेद से परे
एकदम सच्चे बच्चे हो
तुम्हारा सफर अभी शुरू हुआ है
ऊबड़-खाबड़ रास्ते जानना जरूरी है
जीवन के रंगों में डूबना भी चाहिए तुम्हें
दुनिया का नक्शा ध्यान में रखो
तुम्हें अफ्रीका मिलेगा और इंग्लैण्ड भी
हिटलर की कब्र ना सही बाबा की तस्वीर भी
हर तस्वीर में
हर रंग और रूप के चेहरे पाओगे
बच्चे ।
दुनिया सिर्फ टी वी स्क्रीन में ही सिमटी नहीं है
वह बहुत बड़ी है
तुम्हारी कल्पना से भी बड़ी ।
तुम अपने काले दोस्त में
नफरत करने लगे हो
जबकि बच्चे
दोस्ती का कोई रंग नहीं होता
न काला
न गोरा ।

चुप्पी

हाँ।
यह सही है कि
मैंने कभी
चुप रहने का
तुमसे वादा किया था।
मगर
हमारे इस शर्तनामे में
यह तय नहीं हुआ था कि
तुम कुछ भी कहते रहोगे
और
मैं नपुंसक मौन झेलते हुए
अपनी चुप्पी कभी तोड़ूँ नहीं
मेरे मुखरित मौन से
घबरा रहे हो दोस्त?
शायद जान गये हो
मेरी चुप्पी भी
कितनी-कितनी
खतरनाक हो सकती है
तुम्हारे लिए!

फुटबाल और दिन

मुझे बच्चा समझकर
तुमने आज फिर
एक नया दिन
फुटबाल की तरह
उछाल दिया है मेरी ओर

मैंने तुम्हारे
फुटबालनुमा दिन को
लपक लिया है
अपनी दहलीज पर खड़े
तुम देखते रहोगे कि
मैं कैसे खेलता हूँ इससे
तुमने दिन की शक्ल में
चुनौती दी है मुझे
और मैं चुनौती को
अपने बाबा की पगड़ी से
तोलता हूं।

तुम्ह विश्वास न हो तो
साझ म देखना
तुम्हारे दिन का मैंने
पचर हुए कलेंडर की
शक्ल म कैसे बदल दिया है।

तुम्हारी भूल है कि
तुमने मुझे बच्चा समझा
यही जानकर दिन को
फुटबाल की तरह
उछाला है तुमने मेरी ओर

अब तो मानत हो
फुटबाल और दिन मे
कोई फक नही है मरे लिए

मैं भरी दोपहरी मे भी
नगी सडक पर
रोदता जाता हूँ
तुम्हारा हर दिन
मैं अब बच्चा नही रहा
बता देना चाहता हूँ।

मैं वो नहीं रहा

वो बचपन
काफी पीछे छूट चुका
जब डरा करता था मैं
नगे पहाड़ की ऊँचाइयों से
अब तो
पहाड़ पर चढ़ने के साथ खड़ा हूँ
इसकी चोटी पर
डर को ठोकर मार दी मैंने

दृष्टि को विस्तार पाने की
छूट भी दे दी मैंने
आसमान के मौन से
माथापच्ची करने का भी
माद्दा है मुझमें।

इस सब के बावजूद
गहराइयों के प्रति
सजग भी हूँ

तुम्हे विश्वास न हो तो
साझ म देखना
तुम्हारे दिन का मैंने
पचर हुए ब्लैडर की
शक्ल मे कैस बदल दिया है ।

तुम्हारी भूल है कि
तुमने मुझे बच्चा समझा
यही जानकर दिन को
फुटबाल की तरह
उछाला है तुमने मेरी ओर

अब तो मानत हो
फुटबाल और दिन म
कोई फक नही है मरे लिए

मैं भरी दोपहरी म भी
नगी सडक पर
रौदता जाता हू
तुम्हारा हर दिन
मैं अब बच्चा नही रहा
बता देना चाहता हूँ ।

मै वो नहीं रहा

वो बचपन
काफी पीछे छूट चुका
जब डरा करता था मैं
नंगे पहाड़ की ऊँचाइयों से
अब तो
पहाड़ पर चढ़ने के साथ खड़ा हूँ
इसकी चोटी पर
डर को ठोकर मार दी मैंने

दृष्टि को विस्तार पाने की
छूट भी दे दी मैंने
आसमान के मौन से
माथापच्ची करने का भी
माद्दा है मुझमें।

इस सब के बावजूद
गहराइयों के प्रति
सजग भी हूँ

चूक कर चौरासी होने की
गलती भी नहीं करना चाहता
एक बार जमीन से उठा तो
उठना चाहता हूँ लगातार
खुद को आसमानी हाथों के
हवाले करने का निर्णय भी मेरा है।
पहाड़ की चोटी ने बदल डाला है
उम्र का समीकरण
बहुत बदल गया हूँ मैं।

चोटी पर खड़ा होकर
सूरज को घूर सकता हूँ अब
बचपन भी क्या कमाल है
कल्पना लोक से बाहर की
हर मामूली बात से
डरा देता है
सुनो बचपन!
मैं हँसना चाहता हूँ
तुम्हारे बचपन पर।

वो चेहरा

तन्हा-तन्हा सा एक चेहरा
लम्हा-लम्हा भीड़ में खोया
सहमा-सहमा उसका साया
कतरा-कतरा ख़ून का रोया

भटकन-भटकन क्या कुछ पाया
गर्दिश में वह पागल साया
दुनिया से फिर जा टकराया
जिसका भी संग उसने पाया
धोखा खाया, धक्का खाया
फिर कुछ भी उसके हाथ न आया

नज़र-नज़र देख रहा है
ख़ंजर-ख़ंजर तोल रहा है
बंजर-बंजर डोल रहा है
जंगल-जंगल खोज रहा है
शजर शजर पर
नाम किसी का।

वह

तपती दोपहर मे
कोलतार की सड़क पर
आसमान से उतरता लावा
और
नगे पाव/पसीने से लथपथ
हाथ ठेले मे धूप लादे
रेंगता है वह।

गदन से चिपका गिरेबान
जेब म खनकते चद सिक्के
सिक्को की खनक से
बार-बार सिहर उठता है वह।

शाम बहुत दूर तो नही
घर पर बीवी-बच्चे
चूल्हा-चौका
राह तकते सब
जब सामने होंगे सभी
तब क्या करेगा वह ?
काश !
ठेले की तरह ही
हर शाम को भी
ठेल सकता दूर तक
देर तक
सोचता है
वह।

जिजीविषा

सांस की सीमा के
पार पहुंच जाओगे
हार कर मौन के
द्वार पहुंच जाओगे
मुक्तिपथ खोज रहे हो
मुक्तिबोध हो जाओगे

जोश का जनाजा
निकल रहा है फिर भी
पत्थरों के सीने में
प्यार ढूंढ रहे हो
अर्थ की अभिलाषा में
अर्थहीन हो रहे हो
जिजीविषा की जिद् पर
फिर भी अड़े हुए हो

रागनी की चाह में
धुआं-धुआं हो रहे हो
अजनबीपन से भाग कर
अपनापन ढूंढ रहे हो
जाने कब से तुम
अपने आप में
दूर भाग रहे हो ।

सम्बन्धो के चित्र

रिश्ता जोडने की बात पर
तुम्हारे साथ हो लिया
हम इतनी दूर चले
मगर
ग्रजनबी बने रहे/ग्राज तक

विश्वास का सेतु/ग्रास्था का इन्द्रधनुष
क्यो टूट गया अचानक
मैं ईमानदार था/ग्रब भी हूँ
न जाने वो बात क्या है कि
तुमने अपने शून्य की परिधि में
कोई रग नही भरा

जीवन के समीकरण मे उलझे रहे
पर सम्बन्धो मे नही सुलझे/मौन रहे
सवाद से सहमते रहे ।
एक बात मानो
ग्रपने मन का कनवास फैलाग्रो
उस पर बनेंगे ग्रनगिनत चित्र
चाहो तो उनमे से चुन लेना
कुछ ग्रपने लिए
ग्रौर
फिर उन्हे देना जिन्दगी के व रग
जिन्हे
विश्वास/सम्बन्ध/ग्रौर ग्रास्था
कहते है ।

सत्रास

पहाड़ पर चलने का
निमन्त्रण दे रहे हो दोस्त
जीवन से पलायन
सिखा रहे हो दोस्त
शहर की शराफत (?) से
परेशान हो शायद
पहाड़ पर भी तो
अपनी पीडाए ही परसोगे

चाहते ही हो अगर शहर से कटना
तो भीड मे भी रहा जा सकता है अकेला
शहर मे कम से कम जिन्दा तो हो
वहा पहाड़ पर सास लेना भी
मुश्किल होगा

पहाड़ को तुम नही पहचानते
वहा भी सन्नाटे के परचम लहराते हैं
वहा पत्थरो से पूछा है कभी
तुमने उनक अकेलेपन का सबब ?
अकेलेपन से
क्यू घिरे रहना चाहते हो तुम ?

घुटन कहा नही है ?
मरना ही चाहत हो तुम
तो अकेले मे क्या
भीड की भगदड मे
क्यों मर नही सकत ?

यन्त्रणाघर

यन्त्रणाघर की 'साउण्ड प्रूफ' दीवारों में कैद
अनगिनत चेहरे/दम तोड़ती चीखें
पागल करार दिये गये लोगों का आर्तनाद।

ये चीखें-चिल्लाहटें और आर्तनाद
सब मिल कर मजबूर नहीं कर सकते पिघलने के लिए
इन दीवारों के पार की दुनिया को
हमारा माहौल जीने का भ्रम दर्शाता है

लगता है रेहन रखी जिंदगी को
सूदखोर हालात के पंजों से
छुड़ाने की तमाम कोशिशों के बीच
उम्र जवाब दे गई है/गोया
जिंदगी मृगतृष्णा हो गई है
पानी मर चुका है हमारी आंखों का
उनमें कतरा-कतरा खून जमा होने की भी
गुंजाइश नहीं रही है।

बदलाव की बात करने वाले
मासूम नहीं जानते कि बदलाव के लिए
अंधी गुफाओं से गुजरना होगा
क्षितिज पर हजारों लाखों बार
टांगना होगा/नया सूरज
ताकि
उसकी तपिश से/पिघल जाएं/या कि
तिलमिला कर तड़क जाएं
यन्त्रणाघर की खौफनाक दीवारें।

जकड़न

वक्त की मार से
जर्जर हुई दीवार
और/दीवार से
चिपका है कैलेण्डर

इसकी तारीखों में छुपे हैं
बीमार दिन/मुर्दा रातें/अपाहिज खुशियाँ
नपुंसक इच्छायें/मजबूर महत्वाकाक्षायें
इसके अलावा
हर वार पर सवार उपवास।

शुक्र है
तारीखों वाले इस कैलेण्डर पर
खोखली/झूठी/हसी/भरी मुस्कान लिए
कोई तस्वीर नही है
क्योंकि
कैलेण्डर सरकारी है
और सरकार के पास
खुशिया नही होती/बांटने को
वरना

हर गुजर शाम
उतारे हुए चेहरों को
चिढ़ाती रहती तस्वीर !
हो सकता है
वह दौर भी आए
जब गिरें सभी तमाम दीवारें
बंद खिड़की-दरवाजा को
नजरअन्दाज करती
रोशनदान के रास्ते
सरसराती हवा
भीतर चली आये
तब
कलेण्डर के पन्ना का वजूद
फड़फड़ा उठे
मुमकिन है
हवा के गुस्से से
बिखर जाए कैलेण्डर के पन्ने !
मगर, होगा क्या ?
दिन
महीने
साल
तारीखों की लम्बी कतार
तब भी बंधी रहेगी

आदमी पैदाइश से ही
तारीखों में उतर जाता है
ताउम्र झेलता है
तल्खियां तारीखों की
क्योंकि
इन्हीं तारीखों में लिपटा वह
तवारीख में बदल जाता है ।

वह ठड से मरा है ?

मौसम की तमाम धमकियो के बावजूद
शहर के एक वीरान चौराहे पर
योजना भवन की दीवार के सहारे
नितान्त अकेला/उकड़ू बैठा वह
रद्दी कागज और चिथडो से जलाये अलाव मे
सारी रात सर्दी को झोकता रहा
गर्मी के बहलाव मे
सास की धौकनी धौकता रहा
ठड मे ठिठुरता पिल्ला
कू ऽकू ऽकू ऽ करता रहा/वह विसूरता रहा
शहर सोता रहा
अचानक ! गश्ती सिपाही को देखकर
अकड गया उसका समूचा वजूद काप कर
सिपाही ने टोका/लाठी से ठोका
फिर छोड दिया ठहाका
वह रह गया/ठगा-सा !
चार दिन स
खाली पडे पट म
लाठी धसी थी
सिपाही क चेहरे प हसी थी
उसकी सास गले मे फसी थी
रात चश्मदीद गवाह है
वह कुछ देर पहल मरा है
सुबह हाशिय मे बद
अखबार की सुर्खिया थी
'भिखारी ठड स मरा है ।

उलझी आकृतियां

दीवार के सीने से
धीरे-धीरे
धूप का आंचल सरकने लगा
और
देखते-देखते
दिन शर्म से
अपने आप में
सिमटने लगा
मुंडेर पर
सांझ की उदासी
तारी होने लगी
आंगन के कोनों में दुबकी
खामोशियां छटपटाने लगीं
अजनबी कदमों की आहट से
सिहर उठा सन्नाटा !
गहराती सांझ में
उभर-उभर आती है
एक अनजान आकृति
आकृति के बाद
आकृतियों का
लम्बा/अन्तहीन सिलसिला !
शून्य में
कैसे सिमटा/किसे अहसास ?
आकृतियां उलझ गईं
उलझी आकृतियों में।

नियति

कभी-कभी मनमनसाहत का
ढाग रचना
बनिए की कमीनगी है
किसने जाना है
उसकी मुस्कराहट में भी
मनों-मन जहर भरा है

सुनो दोस्त !
उसके बहकावे में न आओ
गौर करो
बनिया पक्का बनिया है
कभी किसी का हमदर्द नहीं हो सकता
खून पीना/हड्डियां चूसना/ठाठ से जीना
उसकी आदत है
और शायद
बनियापन को जिन्दा रखने की
परम्परागत मजबूरी।

कल
इसका बाप यही किया करता था
आज
खुद ऐसा ही कर रहा है
कल
उसका बेटा भी यही करेगा
सच !
कल आज और कल मे
कुछ भी तो बदलाव नही दिखता
होरी/धनिया/बनिया
हर युग म रहे है/रहग
हम वैसे ही चौराहा पर
रस्तराओ मे
घटा शब्दो की जुगाली मे
दिन काटते रहगे
अथ का स्वाद फिर भी नही मिलेगा
फ्रेम मे जडी तस्वीर की तरह
काउ टर पर बैठा बनिया
मुस्कराता रहगा हम पर

हम अधेर म हैं
उधर बचारगी का बुत बना धनिया
अपने तीख नाखूना से
नोच रहा है अयत त्र का जिस्म
जिस पर चिटचिटा रहा है
मयूषा प्रजातन्त्र
हर रात कराहा म कट रही है
बनिया मदिर की घटियां
घटो टनटनाता रहगा
बाहर खडा कोई ढोठ बच्चा कहेगा
सब एस ही चलता ।'

इक्कीसवीं सदी मे

नींद बटेगी साथ मे सपने भी बटेंगे
मगर
बाटने वालो के सामने
रोटी का सवाल
फिर भी
विचाराधीन रहेगा !
तुम निरे बच्चे हो
जो 'क्यू' मे खडे हो
अँधी गली के मोड पर
अधेरे म लिपटी नीद बट रही है।
तुम बहकाए जा रहे हो दोस्त।
नीद भीख मे बटने की चीज नही होती
उसे कभी तो आना है
पट खाली हो या भरा
नीद तो आएगी
तुम बाटने वाल हाथो तक पहुचोगे
तब तक हाथ सिमट जायेंगे
और/फिर
सुबह हो जाएगी।
जीवन-चक्र ऐसे ही चलेगा
आज नीद बट रही है
कल चैन घट जाएगा
अब भागना पडेगा तुम्हे
राशन काड पर
चद सासो की खातिर।

तुम

पेड़ की छाल जैसे
क्यों उतार दी जाती है
तुम्हारी अस्मिता की खाल ?
तुम इन्सान हो
बेजुबान पेड़-पत्थर नहीं

तुम्हें खिलौना समझा जा रहा है
और तुम
खड़े रहते हो मौन ठूंठ की तरह
अपनी आखों के आगे
तुम्हें नंगा किया जा रहा है
इसी तरह खामोश रहे तो
वह दिन दूर नहीं
जब देखते देखते
तुम्हें जंगल बना दिया जाएगा
फिर
मौसम भी तुम्हारा नहीं रहेगा
इसीलिए जरूरी है कि
पॉश कॉलोनियों के
आभिजात्य पेड़ों की तरह
तुम भी अपने चारों ओर खींच लो
एक बाड़ कांटों की/ताकि
कोई भी तुम्हारे वजूद पर
कुल्हाड़ी न चला सके ।
सुनो भाई ! अपनी हथेलियों की तरह
खुद को जानना
बहुत बेहद जरूरी है ।

पगलायी प्रतीक्षा

पगलायी प्रतीक्षा में
कटते रहे है हम
पल पल हर क्षण
बटते रहे है हम
बौनी होती उम्मीदें
और
उम्मीदो से ज्यादा
ऊंचा उठा आसमान।।
आसमान रहा अजनबी
दरारें ही दरारें
टुकड़ो मे बटता आसमान
न जुड़ पाने की स्थिति तक

हम प्रतीक्षारत हैं/बेशक
प्रतीक्षा की नियति/पगला जाना हो
कुछ प्रतीक्षा मे/कुछ उम्मीद मे
हजारो-लाखो आँखें
आसमान तक रही हैं
आसमान तकती हुई आखो के साथ
उठने लगे हैं हाथ
मुमकिन है
ऊंचा उठने की इस प्रक्रिया मे
उम्मीद और आसमान की ऊंचाई म
कुछ भी फर्क न रहे
काश ! वह लम्हा भी आए
जब आदमी आसमान जितनी खुशियां
समेटने के काबिल हो जाए।

तुम

पेड की छाल जैसे
क्यो उतार दी जाती है
तुम्हारी ग्रस्मिता की खाल ?
तुम इ सान हो
बजुबान पेड-पत्थर नही

तुम्ह खिलौना समझा जा रहा है
ग्रोर तुम
खडे रहते हो मौन ठू ठ की तरह
ग्रपनी ग्राखा के ग्राग
तुम्ह नगा किया जा रहा है
इसी तरह खामोश रहे तो
वह दिन दूर नही
जब देखत देखते
तुम्ह जगल बना लिया जाएगा
फिर
मौसम भी तुम्हारा नही रहेगा
इसीलिए जरूरी है कि
पाश कॉलोनियो के
ग्राभिजात्य पडो की तरह
तुम भी ग्रपने चारो ग्रोर खीच लो
एक बाड काटो की/ताकि
कोई भी तुम्हारे वजूद पर
कुल्हाडी न चला सके।
सुनो भाई ! ग्रपनी हथेलिया की तरह
खुद को जानना
बेहद बेहद जरूरी है।

तुम्हारी मुस्कराहट

तुम मुस्करा नही सकते
मुस्कराने का ढोंग रचते हो
जब भी ऐसा किया तुमने
कितने नकली लगे हर बार
तुम्हारे होठों पर खिंच आई
इंच-इंच मुस्कान
कितनी जहरीली हुआ करती है
इससे बेहतर हो तुम
जो न जान सके तुम्हें अब तक
उन्हें जरूर अच्छे लग सकते हो।
तुम्हारे इस तरह
वक्त बेवक्त जहर उगलने से अच्छा है
तुम्हारा खामोश रहना।

सिलसिला

चौराह उलझे हैं आपस में
शहर में बढती भीड के
प्रश्न पर ।
दूर चिराग की लौ भी
उलझी है अंधेरे की
तानाशाही से ।
सभी उलझनें अर्थहीन हैं
भीड रौंदती रहेगी
चौराहों के सीने
और
अंधेरा अंधेरे में करता रहेगा
लगातार लौ के साथ बलात्कार ।
परिणाम वक्त के क्षितिज पर झूल जाएगा
दुर्घटनाएं होंगी
भीड में/चौराहों पर !
लाशों का अर्थशास्त्र
नियता बना रहेगा व्यवस्था का
बलात्कार की शिकार रातें
पैदा करेंगी
मनचाही अनगिनत सिसकियां ।
मजबूरियों के मजार
तय करते रहेंगे अपना सफर ।
सुबह से शाम तक चलता रहेगा
दुर्घटनाओं का अंतहीन सिलसिला ।

आपका शगल

इस सदी का चेहरा तो
पहले ही खून से लथपथ है
और
आप हैं कि
फिर एक नया चेहरा
ढूंढने निकले है।
समय के जर्जर शरीर पर
एक और चेहरा टांगना चाहते हैं
पुराने चेहरे की परवाह किए बिना

आप बदलाव चाहते है
जिन्दगी की सलवटें
साफ करना चाहते है
तो फिर
पुराने चेहरे का क्या होगा
खून से लिथड़े
इस सदी के चेहरे का
क्या होगा।
इस तरह चेहरे बदलते रहे
तो उनके भाव कहां ठहरेंगे

दीवारें बोलती भी हैं

'दीवारों के कान हुआ करते हैं'
सुनता आया हूं बचपन से
अब यह भी जान गया हूँ कि
वे बेजुबान भी नहीं होतीं।
कहावत हकीकत बनी है
मैंने सुनी कहानी
इन्हीं दीवारों की जबानी

दीवारों ने देखा
दीवारों ने कहा
दीवारों से ही मैंने सुना
इन्हीं की आंखों के आगे
तुम लड़की से औरत
बनी या बना दी गई थी
हम दोनों के बीच
अलगाव पैदा किया गया
परिवर्तन की इस प्रक्रिया में
मेरे विश्वास की
हत्या कितनी बार हुई
उससे तुम्हें सरोकार नहीं

कच्चे और भुने गोश्त के
शौकीनों ने
अपना जायका बदलने की खातिर
गर्म गोश्त की व्यवस्था जो कर ली थी
गोश्त हो या कोई और चीज
हमेशा गर्म कभी नहीं रहती
जायका बदलने वाले
अपने मूड के मुताबिक
हर ठंडी बासी चीज
उठा कर फेंक देने में
देर नहीं लगाते
अब तुम औरत बन चुकी हो
लड़की से औरत बनने तक का [illegible]
तुमने अपनी महत्वाकांक्षाओं के
गलियारों से गुजरते हुए
देह-विज्ञान की भाषा [illegible]
तय किया है
तुम्हारा सफर
उन्हीं लुटेरों की [illegible]
जहां हद की [illegible]
क्योंकि,
मेरे [illegible]
अब दम [illegible]।

जीवन रूटीन बन गया है
और मैं रूटीन मे
गति ढूढ रहा हूँ
आज इतवार है
(निकम्मेपन का हर दिन इतवार हुआ करता है)
छत पर बैठे सर्दी की धूप म लिपटे
पिता अखबार पढ रहे हैं
मैं नही जानना चाहता कि
कौन किसे पढ रहा है
पिता अखबार/या
अखबार पिता का चेहरा
पिता का चेहरा
उम्र की एक हद तक
पुराना पड चुका है
और
दोपहर बाद अखबार खुद-ब खुद
हमेशा की तरह बासी पड जाएगा
इस पुराने और बासीपन के बीच
किसी लिजलिजे एहसास की तरह
घिसटता हुआ इतवार भी निकल जाएगा
मैं पिता अखबार और इतवार से
बचता-बचाता निकल जाना चाहता हूँ
क्योंकि
मैं अखबार और पिता म से
किसी का सामना नही कर सकता
और
इतवार स तो कतई नही।

डरा हुआ डर

गाँव और शहर
थर्राने लगे हैं
डर से नहीं
बल्कि
उस भावी क्षण से
जो खून मे लिथड़ा
मिलता है उन्हें
आदमी आदमी से डरे
तो कोई बात भी है
मगर
परछाई तक से डरे
ऐसा क्यों ?
गोली कहीं भी चले
सन्नाटा फैल जाता है

वे जानना चाहते हैं कि
ऐसा क्यो, कैसे और कब तक
चलता रहेगा
और तुम हो कि
उनकी आवाज भी
सुनना नही चाहते
शायद तुम नही जानते
तुम्हारी सडी राजनीति के
मासिक धर्म का रक्तस्राव
कितनी सडाध फैला रहा है
देश केवल दिल्ली ही तो नही है
ससद भवन के पास से
अफरा-तफरी मे भागती भीड ही
देश की जनता नही है
तुम्हे तो खैर
उसकी भी परवाह नही है
तुम्हे कौन समझाए कि
देश राजधानी के बाहर भी है
तुम्हारा सिंहासन
खून के सागर मे डूबा
एक टापू के सिवा कुछ नही
और तुम टापू को ही
सब कुछ मान बैठे हो
सागर मे उफान आने पर
टापू की हस्ती और हैसियत
बिखर जाती है
फिर
तुम्हारी तो
औकात ही है!

घुटन

श्राकाश म उडते
पाखियो को देख
पिजरे म कद तोता
उदास हो जाता है
कटोरे की दाल श्रौर मिच ही
काफी नहीं है
जि दा रहने के लिए
पर कटे तोत का दद
उडान पर निकले पाखी
जानें भी तो कसे भला ?
किसने देखा है
तोते को रोते हुए
वह रोता तो है
मगर दीखता नही

वाह बहादुर !

किसी भी शहर के
किसी भी गली-चौराहे से
रात-रात भर
लगातार सीटी बजाता
डंडा फटकारता
जब कोई गोरखा-चौकीदार गुजरता है
तब दुनिया नींद में डूबी हुई होती है
पहली तारीख को
जब वह हाथ में रजिस्टर उठाए
देहरी पर खड़ा होता है
तब अलसाई आवाज में
सवाल दागा जाता है—
बहादुर ! तुमने कितने दिन नागा की
क्या कहे वह
कितनी रातें उसने
सोए बिना काट दीं।
बहादुर ! अपनी ईमानदारी पर
लगे प्रश्नचिह्न के बावजूद
कभी डिस्टर्ब नहीं होता
हँस देता है एक ईमानदार हँसी
वह जानता है अच्छी तरह कि
खुले में रहने वालों को
बंद दिमागों की बातों का
बुरा नहीं मानना चाहिए
इसीलिए तो हर महीने वह
मुस्कराता/सलाम बजाता
पाँच रुपल्ली पकड़े लौट जाता है।

सुनना नहीं चाहते
बच्चे जान गए हैं
राजा तो
कहीं भी
कभी भी
हो सकता है
लेकिन
वह दयालु हो
यह जरूरी नहीं
बढ़ते हुए बच्चे
शायद कभी नहीं
समझ पाएँगे कि
अब कहानी सुनना
बचपन से भी कहीं ज्यादा
बाबा की नींद के लिए जरूरी है
बाबा हैरान हैं
किसी मासूम जिद्द के बिना
बचपन का सफर
कैसे मुकम्मल होगा
बच्चे जिद्द क्यों नहीं करते
उलझे हैं बाबा इसी में ।

सुनना नहीं चाहते
बच्चे जान गए हैं
राजा था
कहीं भी
कभी भी
हो सकता है
लेकिन
वह दयालु हो
यह जरूरी नहीं
बढ़ते हुए बच्चे
शायद कभी नहीं
समझ पाएँगे कि
अब कहानी सुनना
बचपन से भी कहीं ज्यादा
बाबा की नींद के लिए जरूरी है
बाबा हैरान हैं
किसी मासूम जिद्द के बिना
बचपन का सफर
कैसे मुकम्मल होगा
बच्चे जिद् क्यों नहीं करते
उलझे हैं बाबा इसी में।

बच्चा और माँ

माँ का पल्लू पकड़े
घर भर मे घूमता बच्चा
हरदम
अपनी सुरक्षा के प्रति
आश्वस्त है
मुझे बच्चे और उसकी
आश्वस्तता से ईर्ष्या है
मुझे न जाने क्यो
उसकी सुरक्षा का विश्वास
दिन-ब-दिन
घटता-सा नज़र आने लगा है
अभी तो खैर
बच्चा मस्त है
क्योंकि अभी उसका घर है
घर म माँ भी है
कभी—कभी
माँ के दूर चल जाने पर
उसका पल्लू छूट जाने पर
बच्चा चीख पडता है
उसकी सुरक्षा का भाव
खतरे म पड जाता है
मैं साचता हू
कल क्या होगा
जब बच्चा बडा होगा
मैं भी कल तक बच्चा था
मगर अब नही रहा
मन का हर मौसम झेलने वाला

ग्रादमी हो गया हू
हर ग्रादमी का
इस उम्र मे
मा, घर ग्रौर गाव रहे
यह मुमकिन ता नही
बच्चा ग्रभी मस्त है
क्योंकि
वह बच्चा जो है
जहा मैं हूँ
वहाँ सिफ
ग्रौरत है
मैंने हमेशा इसके चेहरे म
ग्रपनी माँ का चेहरा
ढूँढने की नाकाम कोशिशें की हैं
मैं भूल गया था
यह ग्रौरत माँ हर्गिज नही हो सकती
हा
वह माम ममा ग्रौर मम्मी जरूर है
मेरी माँ का चेहरा
ग्रब तस्वीर म जडा है
ग्रौर
तस्वीर गाव म है
तभी कहता हूँ, बच्चे !
धीरे-धीरे
माँ स कुछ दूर रहने की
कोशिश करो/ग्रादत बनाग्रो
कल बचपन बीत जाने पर
हर मा-नुमा चेहरे म
तुम्हे मेरी तरह
मा को तलाशने का
[illegible]

मुर्गे, मुर्गिया और आदमी

मुर्गे,मुर्गियो का दम
घुटने लगा है दडबो म
वे बाहर निकल आए हैं
और फुदक रह हैं मस्ती मे
आदमी भी घुट रहा है
लकिन वह डरने लगा है
और दुबक कर
अपने दडबों म घुस गया है
मुर्गे-मुर्गिया बेखौफ हैं
और आदमी खौफजदा
आदमी त
डरा
लुटा
पिटा
सिमट रहा है खुद म
यह बात
किसी एक गाव, एक शहर, एक मजहब की नहीं
आदमी और आदमियत क
दिन-ब-दिन बढ़ते जा रह
बौनेपन की है।

प्रतिप्रश्न

जब भी मैं इस राह से गुजरा हूं
पेड़ों ने आते-जाते
मुझसे अनगिनत सवाल किए हैं
तुम्हारे बारे में
मैं उकता गया
एक दिन
पेड़ खामोश थे
और मैं उनसे पूछ बैठा
तुम्हें छोड़कर जाने वाले
क्यों नहीं लौटे अब तक।
मैंने देखा
पेड़ एकाएक
औंध मुंह गिर पड़े
मैं सोचने लगा हूं कि
मैं पेड़ क्यों नहीं हुआ?

याद

तुमने
हिसाब की
पुरानी कापी की तरह
मुझे फिर
याद किया है
शायद
भर लेने
कुछ और जखम
बनाया होगे ।

सूरज

कोई तो सूरज से
पूछे कभी
क्यों झुलसता है
हर रोज

किसकी खातिर
किस पाप का अभिशाप
ढो रहा है
और
आखिर कब तक
ढोता रहेगा ?

आदमी और सतह
(मुक्तिबोध माफ़ करे)

सतह से उठते
आदमी की
बात करने से पहले
आदमी और सतह को
अलग अलग
जान लेना जरूरी है !

चाँद

चाँद ने बादलों में से
झाँक कर एक दिन
मुझसे कहा—
आज बहुत खुश दिख रहे हो
आज तुम्हें
चाँदनी का
एक कतरा भी नहीं मिलेगा।
मैं
चाँद से पूछना चाहता था
कभी-कभी खुश दिखने का
नाटक करना भी
जुर्म होता है
क्या ?

खूँटी पर

खूँटी से उतार कर
कमीज पहनने की तरह
आपस में मिल लेते हैं
लोग, आजकल
एक-दूजे से दूर होते ही
कमीज फिर टंग जाती है
खूँटी पर।

सबब

पहले किसी ग्रौर ने पूछा था
ग्राज तुमने पूछा है
मेरी उदासी का सबब
जवाब ग्रब भी दूँगा
मगर
जाने स पहले
कम से कम
तुम तो बता देना
तुम्हारे बाद ग्राने वाले को
इस सवाल का
क्या जवाब दूँ ?
बताग्रो,
सवाल खरा है कि नहीं ।

सीमा रेखा

घर में बिना पूछे
घुस सकते हो
पास बैठने के लिए भी
'एक्सक्यूज मी' के तकल्लुफ की
कोई जरूरत नहीं
लेकिन
अपनी दुनिया में
तुम्हारी घुसपैठ से
बेवजह डिस्टर्ब होना
मुझे कतई मंजूर नहीं।

प्रतिबद्धता

परत
परत के नीचे
परत
फिर परत
परत-दर-परत
प्याज की परिणति
या
तुम्हारी प्रगतिशीलता की
भुरभुरी सच्चाई ?

अहसास

कुंकुम टीका लगा कर
जीवन-समर की खातिर
मां ने मुझे
देहरी से ही
विदा कर दिया था
फिर भी
ऐसा क्या लगता है कि
मां अब भी हर वक्त
मेरे साथ है ।

सिमटते सन्नाटे

कितने बोझिल हुआ करते हैं
वे क्षण
जब आत्मीयता बदल जाती है
अनात्मीयता में

एक साथ जीये हुए क्षण
बन जाते हैं
इतिहास के पन्ने
और
उनमें सिमट आती है
एकान्तिक उदासियां!
तुम्हारे शहर के
कोलाहल से दूर
मेरा विश्व
धीमे-धीमे
सिमट आता है मुझमें
दूरियां कुछ और दूर तक
खदेड़ देती हैं
सन्नाटे की दिशाओं के
मोड़ पर खड़ा मैं
चिल्ला-चिल्ला कर
अपनी यादों की
भीड़ भी तो नहीं जुटा सकता।

शाम

शाम की आँख से
फिर टपका आँसू
आँसुओं में दर्द
तोलती है शाम

रात की तन्हाई में
डरने लगी है शाम
अपने ही आप से बस
बोलने लगी है शाम

इस शाम का ऐसा
मंजर तो देखिए
जाने किसके खौफ से
खंजर बनी है शाम

दिन की रोशनी में
लूटा गया है दिन
लुटने का सबब जाना
तो फफक पड़ी शाम

रोशनी के लिए

हाँ !
मैं गुनहगार हूँ
फिर भी
रोशनी का
तलबगार हूँ
अँधी गली के
मेरे हमसफर
मुझे और तुम्हें/रोशनी से सराबोर
एक मोड़ की जरूरत है।

टीस

मा
इस ज म मे तो
प्यार नही पा सका
मैं तुम्हारा
कोई बात नही
फिर ज म लूंगा
तुम्हारी ही कोख स ।
हो सकता है
अगले ज म मे
शायद पसीज जाओ तुम
मेरे लिए
और दे सको
वह प्यार
जो चाहता रहा तुमस
और
वह प्यार
मिलना ही चाहिए ।
मां ! मेरा तो कुछ नही
तुम्हार वजूद का
नकारू गा नही कभी
नही कहूँगा कि
तुमने कभी
मुझे बेटा नही कहा ।
मगर
मैं यह भी तो
नही चाहूगा कि
मरे बाद तुम्ह कोई
मां ही नही कह ।

तुम्हारे बिना

अभी कल परसों की ही तो बात है
जब तुमने जाते-जाते
हिदायतें दी थी मुझे
"देखो मेरे पीछे
घर अस्त-व्यस्त न रखना
समय पर खा पी लेना
और सुनो
देर रात तक
भटकना भी मत बाहर"
मैं तुम्हारे कहे मुताबिक
घर को करीने से रख रहा हूँ
खान-पीने म नागा नही करता
भटकना भी कहाँ होता है अब
अपने-आपसे ही
बाहर तो निकल नही पाता।
कहने का मतलब यह कि
सब कुछ वैसा ही चल रहा है
जैसा छोड गई थी तुम।
हाँ

एक बात जरूर हुई है इस बीच
जिस पर मेरा भी तो
कोई वश नही।
सबको बिखरने से
बचाने की कोशिश मे
तुम्हारे बिना
खुद कितना बिखर रहा हूँ
अपने रेशे-रेशे होते रहने का
अहसास भी होने लगा है
बिखर रहा हू लगातार।
तुम बस यही सोच कर आना कि
तुम्हे और कुछ नही करना होगा—लौटकर
मुझे समेटने के सिवा।
तुम नही हो यहा
तो लगता है
घर भर मे हो
(तुम्हारे बिना भी इसे घर कहूँ ?)
पहले वहम था कि
तुम्हारी सीमा
सिर्फ किचन की दहलीज तक ही है।
मगर
अब सोचता हूँ/देखता हूँ
घर का ऐसा कौनसा कोना है
जहाँ तुम नही रची-बसी हो।
हाँ!
अब तुम लिखना
कब हो रही है वापसी तुम्हारी
मैं तो चाहता ही हूँ जानना
मेरे साथ-साथ
इस घर की हर चीज
जोह रही है बाट तुम्हारी

घर की चौखट तो
तुम्हारे जाते ही
उदास हो गई बचारी
कैसे समझाऊँ उसे
किसी के जाते ही
जल्दी लौट आने की
उम्मीद करना बेमानी है
पर
चौखट का अपना दर्द है
और
मेरा अपना।
कौन किसे
बहलाए
समझाए।
लेकिन
तुम फिक्र न करना
यों मैं ठीक ठाक हूँ।
यह तो बस यूं ही
तुम्हारी याद मे
भीग आई आखें
पोंछने से पहले के वक्त का
क्षणिक आवेग था।
चाहो तो
कुछ भी नाम दे सकती हो
इस मन स्थिति को
वैसे
अब एकदम ठीक हूँ
तुम चिंता फिर भी
मत करना
साथी।

अंधेरे के खिलाफ छिड़ो जंग

मुश्किल नहीं है
अंधी गली का
सफर तय करना
गर रोशन रहे
हमारे भीतर का
सूरज
और
इस गली के
आखिरी मोड़ पर
जब सवेरा होगा
भोर की पहली किरण की
शमशीर से
टुकड़े टुकड़े हुए
अंधेरे के बदन का खून
पूरब के क्षितिज पर
फैल जायेगा
डरो मत
तुम्हारी दहलीज पर
सूरज जब सिज्दा करे
तुम खोल देना
तमाम खिड़कियां-दरवाजे
ताजा हवा के झोंके चले आयेंगे भीतर
बंद कमरे की घुटन
भरभरा कर ढह जाएगी
धूप फैल जायेगी आंगन में
और कोना-कोना
जी उठेगा।

बदलनी होगी शहर की परिभाषा

शहर को मुर्दा किसने कहा
शहर मुर्दा नहीं है
वह अँधेरे से
आतंकित भी नहीं है
देखा नहीं
फिजा रोशनी से सराबोर है
अभी कुछ देर पहले ही
किसी ने क्षितिज पर
आग का गोला फेंका है
मरघटों वहाँ आ रहे
मुर्दा शहर की जिन्दा लाशें
जिन्दगी के नाम पर
लड़ने की खातिर/चौराहों पर
आ खड़ी हुई हैं।
तुमने सिर्फ उनके चेहरे पढ़े हैं
आँखों को पढ़ो
तुम्हें मिलेगी उनमें जिजीविषा
जिन्दा मनुष्य में पैदा हुई
हरारत को कभी महसूसा तुमने ?
शहर जी उठा है।
शहर के सिर पर तने आकाश में
चील गिद्ध को मंडराते देख
तुमने कैसे माना कि यह शहर मुर्दा है ?
तुमने अपने पूर्वाग्रह को
बेमानी शब्दों में ढाला है
तुम्हें ये बासी शब्द वापस लेने होंगे
बदलनी होंगी धारणाएं
श्मशान में खड़े रह कर शहर को तोलते हो
यह क्या मजाक करते हो ?

हश्र

तुम बहुत खुश हो कि
तुमने मुझे मिट्टी में मिला दिया
यह मत भूलो
मिट्टी में मिल कर भी
मैं मिट्टी पलीद कर सकता हूँ तुम्हारी

याद रखो
यही मिट्टी
आँख में घुस कर
तुम्हें रुला भी सकती है।
बहुत नाज है
तुम्हें अपनी ऊँचाइयों पर
जमीन पर झाँक कर देखो जरा
जिस इमारत पर खड़े
अभी इतरा रहे हो
तुम्हें मालूम नहीं है
उसी इमारत की
नींव के पत्थर
जमीन बदलने के लिए
कुलबुला रहे हैं
फिर कहाँ रहेंगी
तुम्हारी ये ऊँचाइयाँ
गगनचुम्बी दम्भ की इमारत
हरहरा कर ढेर होगी
वह दिन भी दूर नहीं

जब तुम और तुम्हारी
मक्कारी के आयोजन
एक साथ मिट्टी में मिलेंगे
आज उधार के उजालों पर
इतरा रहे हो
कल अपने ही अँधेरों से
सिहर जाओगे।
तब कहाँ रहेगा फर्क
तुम्हारे और मेरे बीच
ऐसा हुआ तो
(ऐसा तो होगा ही)
अपने हर कदम पर बढ़ने के बाद
पीछे छूटे निशानों को देखकर
सहम जाओगे/लड़खड़ाओगे
और
टकराव का रास्ता पकड़ लेने के
अपने गलत निर्णय पर
रोओगे-पछताओगे भी
तब अपना ही सिर फोड़ने के लिए
तुम्हें ईंट-पत्थर
कुछ भी नहीं मिलेंगे
क्योंकि
तब तक ये सभी तुम्हारी [illegible]
मेरी तरह वाकिफ हो चुके [illegible]
और
तुम्हारे पास
स्यापे के सिवा
करने को कुछ नहीं [illegible]
फिर
मिट्टी में मिलने से
तुम्हारी [illegible]।

बटवारा

जमीन बटेगी
तो क्या
आकाश भी बटेगा
कुछ रहे शेष उससे पहले
बहतर होगा
हम खुद को एक-दूजे स काट लें
इस घर को बाट ले
शुरुआत मा से हो
उसक दो वक्ष हैं
एक तुम ले लो
और एक मैं ले लूँ।
फासले बढ चुके हैं
फसला हो चुका है
अब हम भावुकता क भवर से
किनारा कर लें।
मगर याद रह
इसके लिए जिम्मेदार
केवल हम हैं
हमारे बच्चे नही
बटन और बाटने की बात
हमारे ही आगन से उठी है
इसी आगन की मुडेर से
मुनादी भी होनी चाहिए कि

हम टुकडो-टुकडो मे
बट रहे हैं   बट रहे हैं
रिश्तो के जख्मी होने के बाद
हमारे बीच दीवार होगी
जिसके दोनो ओर
चद मुट्ठी धूप/टुकडा-टुकडा आसमान
(शायद)
पश्चाताप के आंसू
खून के गाढेपन का
बीता अहसास
और
अपने-अपने हिस्से का
अकेलापन होगा।
याद रहे प्यारे भाई
अपनी खडी की गई दीवार से
लिपट कर कभी रोना नही
खुली आख कभी सोना नही
क्योकि
बटवारा तो हमने ही तय किया
फिर रोना कसा ?
भस्म हुई भावनाओ
और
आंख से टपके खारे पानी को भी
अपना कहने का अधिकार
हमारा नही रहेगा
तुम्हे अपना हिस्सा चाहिए/मिलगा
फिर मुझ भी मजबूरन
दूसरा हिस्सा अपना कहना ही पडेगा
ताकि
कल हमारे बच्चे कह सकें—
चाचा ! यह घर मेरा है

धाऊ ! यह मेरे मटके का पानी है।
यह सब होना था
और हुआ भी।
फिर भी
इतना तो बता दो
कल अगर हम
फिर मिले श्मशान मे
तब वहा मेरा हिस्सा
कितना होगा
वहाँ मैं भी तो चाहूँगा
व ट वा रा
जिससे मुर्दा रिश्तो को
दफन कर सकू ।
मकान हो या मरघट
हर जगह बटनी चाहिए ।
तुम्हे याद होगा
श्मशान की भूमि को
अतीत हो चुके हमारे सष्टा ने
समाज को दान दी थी
इसीलिए तो
माँ की कोख स मरघट के कलेजे तक
हमारा अटूट लेकिन
अनचाहा रिश्ता है।
तुमन सिफ
अपने हिस्स पर सोचा है
बटने और बाटने की
इस यात्रा के बीच
तुम खुद कितनी इकाइयो म
बट चुक हो
इस बात का अहसास भी
है क्या तुम्हें ?

जनगण
ल्ली से
प्रपादक

{रदमन
मोषक,
रूप मे



नवीन पंछी

—मेड़ता रोड (राज) 20 नवम्बर, 1959

—एम ए (दर्शन शास्त्र, हिन्दी)

—दैनिक राजस्थान पत्रिका, जलतेदीप, जनगण और प्रतिनिधि अखबारों के साथ ही दिल्ली से प्रकाशित मासिक 'दर्पण' मे बतौर उप-संपादक

—आकाशवाणी जोधपुर, जयपुर और दूरदर्शन केन्द्र, जयपुर मे काफी समय तक उद्घोषक, प्रस्तुती सहायक और रचनाकार के रूप मे संबद्ध

—सन् 1978 से रंगमंच से जुड़ाव

—नई दिल्ली म भारत सरकार की नौकरी

—55/4 सी, सेक्टर-II, डी आई जेड एरिया, कालीबाड़ी मार्ग, गोल मार्केट,
नई दिल्ली 110001